भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका :–

जति एक संस्थागत समूह है जो भारत जैसे परम्परावादी समाज की राजनीति को मुख्य रूप से प्रभावित करती है। यह परिवारों का ऐसा समूह होता है जो किसी वंश से संबंध बनाते हुए किन्हीं विशेष नियमों, रीति रिवाजों व रूढ़ियों का अनुसरण करता है। यह एक दबाव समूह के तौर पर भी काम करता है और अपने हित में राजनीतिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करने की कोशिश करता है। प्रो. रूडोल्फ के शब्दों में **भारत के राजनीतिक लोकतंत्र के संदर्भ में जाति वह धूरी है जिसके माध्यम से नवीन मूल्यों और तरीकों की खोज की जा रही है। यथार्थ में यह एक ऐसा माध्यम बन गयी है कि इसके जरिए भारतीय जनता का लोकतांत्रिक राजनीति की प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है। प्रो. रजनी कोठारी** मानते हैं कि भारतीय समाज राजनीति से प्रभावित होता है। उनके अनुसार, **भारत की जनता जातियों के आधार पर संगठित है। अतः न चाहते हुए भी राजनीतिक वर्ग को जाति संस्था का उपयोग करना पड़ता है। जाति को अपने दायरे में खींचकर राजनीति उसे अपने काम में लाने का प्रयत्न करती है। साथ ही राजनीति जातियों को देश की व्यवस्था में भाग लेने का मौका भी देती है।**

भारतीय समाजिक व्यवस्था में विद्यमान लगभग सभी धर्म में जाति का स्वरूप पाया जाता है। जाति शब्द की उत्पति स्पेनिश शब्द **कास्ट** से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ **प्रजाति, नस्ल या जीवों का एक साझा प्रकार** होता है। इसका निर्धारण जन्म के आधार पर होता है। किसी एक समूह में पैदा हुए लोंगों का जन्म के आधार पर ही विशेषीकरण कर दिया जाता है। जन्म के आधार पर ही उनके समूह का निर्धारण हो जाता है। ये व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी प्रकार के संबंधों का निर्धारण करता है। भारत में समाज का स्तरीकरण मुख्यतः जाति के आधार पर ही होता है। यही कारण है कि जाति भारतीय राजनीति को मुख्य रूप से प्रभावित करती है। यह भारतीय राजनीति की प्रकृति, संगठन और राजनीतिक दलों तथा हित समूहों की कार्यप्रणाली का निर्धारण करती है। संक्षेप में हम भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका को निम्न प्रकार से देख सकते हैं:–

1. राजनीतिक समाजीकरण में जाति की भूमिका – भारत में अलग अलग जाति समूहों की निष्ठा अपने हितों और विचारधारा के आधार पर अलग अलग राजनीतिक दलों के प्रति होती है। जन्म से ही अपने परिवारों में वयक्ति का राजनीतिक उन्मुखीकरण परिवार के सदस्यों के विचारों के आधार पर किसी राजनीतिक दल के पक्ष या विपक्ष में हो जाता है। बड़ा होकर वही व्यक्ति नेतृत्व के चुनाव में अपनी विचारधारा के आधार पर मुख्य भूमिका निभाता है। वह अपने जाति के ही किसी उम्मीदवार को चुनने की कोशिश करता है जिससे उसके जातिगत और नीजी हितों की पूर्ति होती रहे।

2. जाति आधारीत राजनीतिक दल – जाति भारत के राजनीतिक दलों की एक मुख्य विशेषता है। यहां राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को अगर छोड़ दिया जाए तो क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का गठन मुख्य रूप से जाति के आधार पर ही होता है जिनका मुख्य उद्देश्य अपने जातिगत हितों का संरक्षण और उनको बढ़ावा देना होता है। तामिलनाडु में डि. एम. के और ए. आई. डि. एम. के. का गठन राजनीति में ब्राहम्णों के वर्चस्व को चुनौति देने के लिए हुआ। पंजाब में अकाली दल का गठन सिखों के हितों के संरक्षण के लिए हुआ। उतर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी का उदय और सफलता दलित जातियों के समर्थन पर निर्भर

करता है। भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय स्तर के दल भी अपना जनाधार जातियों में ढूंढते हैं।

3. जाति आधारित दबाव समूह –भारत में कई सारे जातिगत दबाव समूह हैं जो अपने जातिगत हितों के संरक्षण और संवर्धन के लिए प्रयासरत हैं तथा संगठित रूप से सरकार को प्रभावित करते रहते हैं। ऐसा देखने में आता है संस्थानात्मक रूप में जो जातियां सरकार को प्रभावित करने की कोशिश करती हैं उनका प्रभाव असंगठित जातियों की तुलना में ज्यादा होता है। अनेक जातीय संगठन और समुदाय जैसे तमिलनाडु में नाडार जाति संघ, गुजरात में क्षत्रिय महासंघ, बिहार में कायस्थ सभा तथा शिड्यूल कास्ट फेडरेशन, सनातन धर्म सभा आदी संगठित तौर पर अपने जातिगत और सामुदायिक हितों के लिए सरकार के साथ सौदेबाजी भी करते हैं।

4. जाति और मतदान व्यवहार – जिस प्रकार जापान में मतदान व्यवहार समूह निर्धारित होता है, ब्रिटेन में वर्ग निर्धारित होता है, अमेरिका में प्रजाति या नस्ल आधारित होता है, भारत में यह जाति आधारित होता है। चुनावी सभाओं का जातिय आधारों पर आयोजन वर्तमान भारतीय परिवेश में आम बात हो गई है। विशेषकर विधानसभा चुनाओं में जातिगत मुद्दों और क्षेत्र विशेष में जातिय प्रधानता के आधार पर उम्मीदवारों का चयन आम हो गया है। मतदाताओं का रूझान भी अपने जाति विशेष के उम्मीदवार के प्रति ज्यादा होता है। इसी तथ्य का इस्तेमाल करते हुए राजनीतिक दल उसी जाति विशेष के उम्मीदवार को उस निर्वाचन क्षेत्र में उतारते हैं जिसके जीतने की सम्भावना ज्यादा होती है। यही कारण है कि **एन. डी. पामर** जैसे विद्वान जाति को भी **राजनीतिक दल** की संज्ञा देते हैं।

5. मंत्रीमण्डलों के निर्माण में जाति की भूमिका – भारतीय राजनीति में जाति का प्रभाव कितना अधिक है इसको इसी बात से समझा जा सकता है कि सरकारों के गठन में भी जातिय समीकरणों का ध्यान रखा जाता है। महत्वपूर्ण मंत्रीमण्डलों का बंटवारा जाति के आधार पर किया जाता है। जिस जाति या समुदाय को लक्षित किया जाता है उस वर्ग के नेता को महत्वपूर्ण पदभार सौंपा जाता है। राष्ट्रपति और राज्यपालों का चुनाव भी जाति और समुदाय को खुश करने के उद्देश्य से किया जाता है। वर्तमान राष्ट्रपति श्री राम नाथ कोंविंद के चुनाव को इस संदर्भ में समझा जा सकता है कि जब वर्तमान सरकार पर दलित विरोधी होने का संदेह व्यक्त किया जा रहा था तो उन्होंने दलित प्रतिनिधि को राष्ट्रपति पद के लिए चुन लिया।

6. राज्य राजनीति में जाति की भूमिका – **माइकंल ब्रेचर** के अनुसार अखिल भारतीय राजनीति की अपेक्षा राज्य स्तर की राजनीति पर जाति का प्रभाव अधिक है। भारत में लगभग सभी राज्यों की राजनीति जाति से प्रभावित है। कुछ राज्यों जैसे झारखण्ड, नागालैण्ड आदी के तो निर्माण का आधार ही जाति है। इनके अलावा बिहार, केरल, तामिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान आदी ऐसे राज्य हैं जिनकी राजनीति का अध्ययन बिना जातिगत विश्लेषण के नहीं किया जा सकता। बिहार की राजनीति में ब्राहम्ण, राजपूत, कायस्थ, यादव, तथा कूर्मी जाति का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। केरल की राजनीति मुस्लिम, क्रिश्चियन और हिन्दू संघर्ष पर टिकी हुई है। आन्ध्र प्रदेश की राजनीति काम्मा और रेड्डी जातियों के संघर्ष की कहानी है तो महाराष्ट्र की राजनीति में मराठों, महारों और ब्राहम्णों की प्रतिस्पर्द्धा देखने को मिलती है। स्पष्ट है कि भारत के राज्यों की राजनीति में जाति एक प्रमुख निर्धारक तत्व है। यही कारण है कि टिंकर जैसे विद्वानों नें भारत में राज्यों की राजनीति को **जातियों की राजनीति** कहा है।

7. जाति आधारित हिंसा – वर्तमान समय में जाति आधारित हिंसा का मुख्य आधार राजनीति ही है। स्वतंत्रता कालीन समय में हालांकि जाति आधारित हिंसा का प्रमाण नहीं मिलता है लेकिन जातिगत भेदभाव और उसे दूर करने के प्रयास उस समय भी हो रहे थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान में मिले अधिकारों और अधिकारों के प्रति जागरूकता के कारण परम्परागत रूप से हावी उच्च जातियों के विरूद्ध छोटी जातियों का संघर्ष शुरू हो गया। राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में इस तरह के संघर्ष आम तौर पर देखने को मिल जाते हैं क्योंकि वहां पर जातियों का टकराव ज्यादा देखने को मिलता है। बिहार, उतरप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात और तामिलनाडु जैसे राज्यों में होने वाले जातीय संघर्ष हिंसक टकराव का रूप भी ले लेते हैं। इन संघर्षों को किसी न किसी राजनीतिक दल का समर्थन प्राप्त रहता है।

8. जाति और प्रशासन – जाति व्यवस्था भारतीय समाज में इस कदर हावी है कि प्रशासनिक व्यवस्थाओं में भी इसकी प्रति देखने को मिल जाती है। सरकारी कर्मचारियों के तबादले, नियुक्ति आदी में भी जाति अपनी भूमिका निभाती है। किसी क्षेत्र विशेष में किसी जाति विशेष के दबदबे को देखते हुए वहां उसी जाति के कर्मचारी को नियुक्त करने की कोशिश की जाति है। सरकारी कर्मवारी भी जाति समीकरणों को देखते हुए ही काम करने की कोशिश करते हैं।

9. **जति और भारतीय संविधान** – भारत के संविधान में भी कई जातिगत व्यवस्थाएं की गई हैं। लेकिन इनका मुख्य उद्देश्य जातिगत भाईचारे को बढावा देना और जाति विशेष को शोषण से बचाना है। मौलिक अधिकारों के तहत् समानता का अधिकार; जो बिना किसी जातिगत भेदभाव के सबको कानून के समक्ष समानता, विकास का समान अवसर, छुआछुत का विरोध आदी की बात करता है। नीति निर्देशक तत्वों के तहत् अनुच्छेद 38, जो सामाजिक न्याय की बात करता है तथा अनुच्छेद 46 जो अनुसूचित जाति और जनजातियों तथा समाज के अन्य कमजोर तबकों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढावा देने के लिए राज्य को निर्देश देता है, संविधान का अनुच्छेद 330 और 332 जो लोकसभा और राज्य सभा में दलितों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करता है। ये सभी प्रावधान समाज के कमजोर वर्ग को अन्य सक्षम वर्गों के समान सहुलियत उपलब्ध कराने के उद्देश्य से किए गए हैं।

उपरोक्त विवेचनाओं के आधार पर निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं के भारत की राजनीति में प्रारम्भ से हि जाति एक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व रहा है। जो कभी सकारात्मक तो कभी नकारात्मक रूप से राजनीति को प्रभावित करता रहा है। कभी कभी ये भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था के समक्ष गम्भीर चुनौती पेश करता है। क्योंकि ये लोकतंत्र के आधार स्तम्भों समानता, स्वतंत्रता और न्याय को नकारात्मक रूप प्रभावित करता है। जाति व्यवस्था में असमानता के तत्व निहित होते हैं, ये जन्म से हि व्यक्ति को व्यक्ति से अलग कर देते हैं। साथ ही जातियों के बीच वैमनस्य पैदा कर ये समाजिक सामंजस्य के लिए भी खतरा उत्पन्न करते हैं। राजनीतिक दल इन असमानताओं को और बढावा देकर अपने राजनीतिक हितों को साधने की कोशिश में लगे रहते हैं। ये समन्वय कभी कभी हिंसक वारदातों में परिलक्षित होता है। ये राष्ट्रीय हितों को प्रभावित करता है तथा राष्ट्रीय एकता के लिए बाधक है। अतः कहा जा सकता है कि भारत में जातियों का राजनीतिकरण और राजनीति का जातिकरण हो गया है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास का इस संबंध में स्पष्ट मत है कि **परम्परावादी जाति व्यवस्था ने प्रगतिशील और आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह से प्रभावित किया है कि ये राजनीतिक संस्थाएं अपने मूल रूप में कार्य करने में समर्थ नहीं**

रही हैं। लेकिन रूडोन्फ एण्ड रूडोल्फ इस संबंध में अलग मत रखते हैं। उनका मानना है कि **अपने परिवर्तित रूप में जाति व्यवस्था ने भारत में कृषक समाज में प्रतिनिधि लोकतंत्र की सफलता तथा भारतीयों की आपसी दूरी को कम करके, उन्हें अधिक समान बनाकर समानता के विकास में सहायता दी है।**